अध्याय 4

शास्त्रीय नृत्य शैलियों का परिचय

भारतीय शास्त्रीय नृत्य की परम्परा अत्यंत प्राचीन व परिष्कृत है। धर्म व आध्यात्मिकता इसकी विषय वस्तु तथा भारतीय संस्कृति इनकी प्रेरणा है। भारतीय नृत्यों का विकास आध्यात्मिक व पौराणिक कथानकों के सहारे मंदिरों के प्रांगणों में देखा जाता है।

यो नृत्यति प्रहृष्टात्मा भावैरत्यन्तभक्तितः ।
स निर्दयति पापानि जन्मान्तरशतैरपि ।। — **द्वारिका महात्म्य**

अर्थात— जो प्रसन्नचित्त से श्रद्धा व भक्तिपूर्वक भावों सहित नृत्य करता है, वह जन्म—जन्मों के पापों से मुक्त हो जाता है।

प्राचीनकाल से मनुष्य की आंतरिक वृत्तियों को पल्लवित व अभिव्यक्त करने का माध्यम नृत्य भी रहा है। 2500ई.पू. मोहनजोदड़ो से प्राप्त नृत्य मुद्रा युक्त कांस्य प्रतिमा, नृत्य की प्राचीनता व अभिव्यक्ति का साक्ष्य है।

सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में संगीत व नृत्य का विस्तृत वर्णन है, सामवेद तो पूरा ही संगीतमय है, उस काल में चारण, कुशीलव, सूत्रधार , नट, शैलूष आदि वर्ग नृत्य कार्य में संलग्न था। इस वर्ग द्वारा आध्यात्मिक दृष्टि से मंदिरों में तथा यज्ञादि कार्यों में नृत्य, गीत प्रस्तुति एवं मनोरंजन हेतु जीवन के सामान्य अवसरों पर गीत, संगीत, नृत्य प्रस्तुति, उक्त दोनों स्वरूपों का वर्णन मिलता है। कालिदास की समस्त रचनाओं में प्रकृति, गीत व नृत्य के वर्णन हैं। प्राचीन मंदिरों में अंकित मूर्तियां भी महत्वपूर्ण साक्ष्य है।

यवन संस्कृति में राजदरबारों में नृत्य कला का और अधिक पल्लवन दिखाई देता है। वर्तमान में शिक्षा के प्रचार—प्रसार तथा ग्लोबलाईजेशन के दौर में अनेक देशी—विदेशी नृत्य तथा उनका मिश्रण यत्र—तत्र दिखाई देता रहता है, लेकिन विशुद्ध भारतीय शास्त्रीय नृत्य कला का मूल्य भी अधिक बढ़ा है। राजकीय

प्राचीन मंदिरों में अंकित नृत्यरत प्रस्तर शिल्प

समारोहों, सांस्कृतिक विदेश यात्राओं, राष्ट्रीय–अंतर्राष्ट्रीय उत्सवों व शिक्षण–प्रशिक्षण में सर्वत्र शास्त्रीय नृत्य अभिजात वर्ग का प्रतीक बन गए हैं।

भारत के विविध प्रदेशों की लोक संस्कृति ने जब शास्त्रीय तत्वों को ग्रहण कर अपनी स्थानीय विशेषताओं के साथ शास्त्रोक्त विधाओं को रचा तो उनमें शास्त्रीय नृत्य भी समक्ष आए। तमिलनाडु से भरतनाट्यम, मणिपुर से मणिपुरी, उड़ीसा से ओडिसी, आंन्ध्रप्रदेश से कुचिपुड़ी, केरल से कथकलि, आसाम से सत्रिया तथा कथक में उत्तर भारतीय राधा कृष्ण रास व दरबारों का प्रभाव आदि. . . . निश्चित तौर पर वेशभूषा, भाषा, वाद्यप्रयोग, संगति, मुद्रा व प्रस्तुतिकरण में स्थानीय प्रभाव दृष्टिगत होते हैं। दक्षिण भारतीय नृत्यों में तमिल, तेलगु, कन्नड संस्कृति का प्रभाव तथा मृदंग, नागस्वरम्, वीणा आदि की संगति, मणिपुरी नृत्य में पहाड़ी प्रदेश की कमनीयता तथा खोल वाद्य का प्रयोग, कथक में राधा–कृष्ण के पदों का प्रयोग, ब्रज व अवधी भाषा का प्रयोग, लखनऊ की नजाकत आदि स्पष्टतः स्थानीय प्रभावों के व्यापक उपयोग को दर्शाता है। इसके बावजूद भी इन शास्त्रीय नृत्यों में स्थानीय प्रभावों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है – नृत्य की सर्वग्राह्यता, व्यापकता, व उच्च कलात्मक तत्वों के साथ प्रस्तुति व प्रचार–प्रसार । जिसने स्थानीय विशेष की सीमाओं को तोड़कर संपूर्ण विश्व के कलाप्रेमियों को आकर्षित किया है तथा इन्हें भारत की गौरवशाली विरासत का भाग बना दिया। उपासना से ओत–प्रोत ये शास्त्रीय नृत्य, चरित्र उत्थान, आध्यात्मिक भावों के विकास, पाशविक वृत्तियों के शमन व राष्ट्र की वैश्विक पहचान में सहायक हैं। आज न केवल भारत के, अपितु विदेशों से हजारों विद्यार्थी अपना संपूर्ण जीवन भारतीय शास्त्रीय नृत्यों के शिक्षण–प्रशिक्षण में व्यतीत कर रहे हैं।

वर्तमान में कुल 8 शास्त्रीय नृत्य शैलियाँ मान्य हैं जिनका मूल क्षेत्र / प्रदेश यहाँ उल्लिखित हैं –

नृत्य शैली : भरतनाट्यम
मूल प्रदेश : तमिलनाडु

नृत्य शैली : ओडिसी
मूल प्रदेश : उडिसा

नृत्य शैली : कथक / कत्थक
मूल प्रदेश : उत्तर भारत

नृत्य शैली : मणिपुरी
मूल प्रदेश : मणिपुर

नृत्य शैली : कुचिपुड़ी
मूल प्रदेश : आन्ध्र प्रदेश

नृत्य शैली : कथकली
मूल प्रदेश : केरल

नृत्य शैली : मोहिनी अट्टम
मूल प्रदेश : केरल

नृत्य शैली : सत्रिया
मूल प्रदेश : आसाम

भारत सरकार के सांस्कृतिक प्रतिष्ठान सी.सी.आर.टी. द्वारा उक्त नृत्यों का प्रकाशन शास्त्रीय शैली के क्रम में किया गया है।_यक्षगान तथा छऊ, उक्त दो नृत्य शैलियाँ भी शास्त्रीय तत्वों व विशेषताओं से पूर्ण हैं तथा अनेक पुस्तकों में इनका उल्लेख भी शास्त्रीय नृत्य शैलियों के रूप में ही प्राप्त होता है।

नृत्य शैली : यक्षज्ञान
मूल प्रदेश : कर्नाटक

नृत्य शैली : छउ
मूल प्रदेश : बंगाल, उड़ीसा

भाव व रस

भरत कृत नाट्य शास्त्र में कहा गया है– विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगाद्रस निष्पत्तिः अर्थात विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी (संचारी) भावों से स्थायी भाव व्यक्त होते हैं और रस में परिणीत होकर आनंद की सृष्टि करते हैं। भरत ने इनकी संख्या 8 मानी है, शान्त रस का समावेश परवर्ती काल में किया गया। इस

प्रकार इनकी संख्या 9 मानी जाती है।

स्थायी भाव : रति
रस : श्रंगार

स्थायी भाव : हास
रस : हास्य

स्थायी भाव : भय
रस : भयानक

स्थायी भाव : जुगुप्सा
रस : वीभत्स

स्थायी भाव : निर्वेद
रस : शांत

स्थायी भाव : विस्मय
रस : अद्‌भुद

स्थायी भाव : शोक
रस : करुण

स्थायी भाव : क्रोध
रस : रौद्र

स्थायी भाव : उत्साह
रस : वीर

अभिनय दर्पण' के अनुसार – **यतो हस्तस्ततो दृष्टिर्यतो दृष्टिस्ततो मनः ।**
यतो मनस्ततो भावो यतो भावस्ततो रसः ।।

अर्थात जिस ओर हाथ जाते हैं वहाँ दृष्टि जानी चाहिये, जहाँ दृष्टि जाती है वहीं मन भी साथ होना चाहिये, जहाँ मन होता है, वहाँ भाव उत्पन्न होता है तथा जहाँ भाव होगा वहीं रस की सृष्टि होती है। नृत्य की सफलता में इस प्रक्रिया अथवा भाव व रस की सार्थक सृष्टि का ही महत्त्व है।

भरतनाट्‌यम

परिचय –शाब्दिक व्याख्यानुसार – भ = भाव, र = राग, त = ताल, नाट्‌य = अभिनय, भरतनाट्‌यम नाम मात्र ही नाट्‌यशास्त्र के उद्देश्य–भावम–रागम–तालम व नाट्‌यम की संयुक्त व्याख्या करता है। मूलतः तमिलनाडु प्रदेश के मंदिरों से प्रचलित इस नृत्य शैली का विकास तंजावुर (तंजौर) में हुआ। दक्षिण भारतीय मंदिरों में देव आराधना हेतु नियुक्त देवदासियों द्वारा ''देवदासीअट्टम'' नृत्य किया जाता था, जिसमें नृत्य व अभिनय की प्रधानता थी। कालांतर में इसका परिवर्तित व शैलीबद्ध शास्त्रीय स्वरूप भरतनाट्‌यम के रूप में समक्ष आया। प्राचीन काल में केवल महिलाऐं ही नृत्य प्रस्तुति देती थी। वर्तमान में ऐसी कोई सीमा रेखा नहीं है। नृत्य की सम्पूर्ण विषय वस्तु भक्त व ईश्वर की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि में भक्ति व श्रृंगार के संयुक्त प्रभावयुक्त है। राग, ताल, लय, भाव, शब्द का श्रेष्ठ समन्वय इस नृत्य में है। भरतनाट्‌यम नृत्य शुद्धता, कलात्मकता, आकर्षण, भाव सौंदर्य व मूर्तिवत मुद्राओं हेतु प्रसिद्ध है। भगवान शिव नटराज मुद्रा में इसके अधिष्ठाता माने जाते हैं।

मराठा राज्य (1798 – 1824) में तंजावुर के पिल्लई बंधुओं – चिन्नया पिल्लई, पोन्निह पिल्लई, शिवानंदम पिल्लई व वादिवेलु पिल्लई ने इसकी

शैलीगत संरचना हेतु महत्त्वपूर्ण कार्य किया। 20वीं शताब्दी में रूक्मिणी देवी अरूण्डेल ने इसका पुनः उद्धार कर इसे विश्व मानचित्र पर रखने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उनके प्रयासों से ही भरतनाट्यम नृत्य पवित्र नाट्य व योग के रूप में पश्चिम में जाना गया। ''कलाक्षेत्र'' नृत्य विद्यालय की स्थापना कर इसकी सामूहिक व मंचीय प्रस्तुतियों को विशुद्ध रूप से संसार के समक्ष रखा। इस क्षेत्र में डॉ. पद्मा सुब्रह्मण्यम के प्रयास भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। वर्तमान में फिल्म संगीत, मंचीय प्रस्तुति, शासकीय प्रयासों व मीडिया के माध्यम से भरतनाट्यम नृत्य का व्यापक प्रचार–प्रसार हुआ है।

नृत्य के चरण–

भरतनाट्यम में आलारिपु, जाति स्वरम, शब्दम वर्णम, पद्म, स्तुति(श्लोकम), तिल्लाना का चरणबद्ध प्रदर्शन होता है। इसके अतिरिक्त – जावलि, स्वरांजलि, कृति, थरंगनृत्तम आदि पर भी प्रस्तुति की जाती है। जब विद्यार्थी नृत्य प्रदर्शन हेतु तैयार हो जाता है तो ''आरंगेत्रम'' प्रस्तुति आयोजित होती है। नाट्यशास्त्र में वर्णित करण, चारी, अंगहार व मंडलों को सुंदर संयोजन इसमें दिखाई देता है।

आभूषण व वेशभूषा

नृत्य के दौरान प्रयुक्त आभूषणों को ''मंदिर आभूषण'' जाना जाता है। इनमें सिर पर टीका तथा चन्द्रमा व सूर्य के प्रतीक आभूषण, गलें में विशेष मालाऐं, हाथ व कमर में रत्नजड़ित पारंपरिक गहनें व पैरों में घुंघरू भरतनाट्यम की पहचान है। घुंघरू 4–5 लाइनों में होते हैं।

नृत्य प्रस्तुति मेंसंगीत

भारत में दो प्रकार की संगीत शैलियां प्रचलित हैं–हिन्दुस्तानी एवं कर्नाटक शास्त्रीय संगीत शैलियां। भरतनाट्यम में कर्नाटक शास्त्रीय संगीत शैली में संगति की जाती है। वाद्यों में मृदंगम्, मंजीरे, वायलिन, बाँसुरी, नागस्वरम्, वीणा आदि का प्रयोग होता है। नृत्य रचनाऐं तमिल, तेलगु, कन्नड व संस्कृत भाषा युक्त होती हैं।

नृत्य गुरू व कलाकार

दक्षिण भारत में नृत्य गुरू को 'नट्टुवनर' कहा जाता है। भरतनाट्यम नृत्य में गुरु शिष्य परंपरा की अनगिनत कडियां हैं कुछ महत्वपूर्ण नाम निम्न हैं– मीनाक्षी सुंदरम् पिल्लई, कंडप्पा पिल्लई, कुबेरनाथ तंजौरकर, ई. कृष्ण अय्यर, रूक्मणी देवी अरूण्डेल, पद्मा सुब्रह्मण्यम, यामिनी कृष्णमूर्ति, कुप्पैया, गोविंदराज, मृणालिनी साराभाई, अनिता रत्नम्, बाल सरस्वती, मल्लिका साराभाई, शोभना आदि।

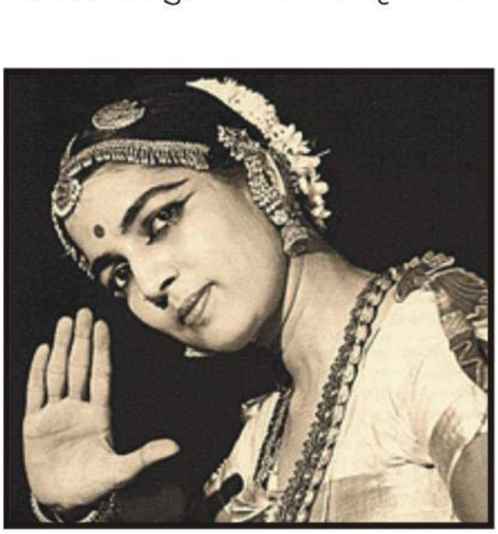

रूक्मिणी देवी अरूण्डेल

ओडिसी

पुरातत्व सर्वेक्षणों के अनुसार यह एक प्राचीन नृत्य शैली है। उदयगिरी की पहाड़ियों में (भुवनेश्वर के पास) खारवेल युगीन अवशेष, कोणार्क, ब्रह्मेश्वर, शिव मंदिर व जगन्नाथ मंदिर में मुद्रित नृत्य प्रतिमाऐं तथा प्राचीन काल से इन मंदिरों की चारदीवारी में इसका निरंतर प्रदर्शन इस शैली की पुरातनता के साक्ष्य हैं। भरत के नाट्यशास्त्र में नृत्य (वृत्ति) की 4 शैलियों का उल्लेख है – अवन्ति, दक्षिणात्य, पांचाली व औड्रमागधी । यहाँ औड्र उड़ीसा तथा औड्रमागधी ओडिसी नृत्य हेतु है। जैन कल्पसूत्र व वज्रयान बौद्ध शाखाओं में भी इसका उल्लेख मिलता है।

इस प्रकार के एतिहासिक महत्त्वपूर्ण प्रामाणिक साक्ष्यों, सदियों से विशुद्ध नृत्यशैली की निरंतर प्रस्तुति तथा उड़िया कवि व रंगकर्मी कालीचरण पट्टनायक के प्रयासों से– 1958 में आधिकारिक तौर पर ओडिसी नृत्य को भारतीय शास्त्रीय नृत्य की प्राचीन शैली व ''ओडिसी'' नाम से स्वीकृत किया गया। कुछ वर्षों पूर्व तक केवल मंदिर प्रांगण में किया जाने वाला यह नृत्य आज मंच प्रदर्शन, शिक्षण–प्रशिक्षण व जनरंजन का साधन है। मूलतः इसकी एकल प्रस्तुति ही की जाती थी, वर्तमान में एकल व सामूहिक दोनों स्वरूप ही प्रचलित हैं।

ओडिसी नृत्य शैली में **'महारी'** व **'गोटिपुवा'** शैलियाँ निहित हैं। महारी महान नारी, भगवान जगन्नाथ हेतु

गोटिपुवा–स्त्री वेश में लड़का

महारी–भगवान जगन्नाथ हेतु नृत्य करनेवाली देवदासी

नृत्य करनेवाली देवदासियाँ तथा गोटिपुवा अकेला लड़का, स्त्री वेश में लड़कों द्वारा किया जाने वाला नृत्य।

माहेश्वर कृत अभिनव चंद्रिका में इस शैली की मुद्राओं (हाथ, पैर व शरीर) का विस्तृत चित्रण है। इसमें लास्य अंग की प्रधानता है। बौद्ध, शैव, शाक्त, वैष्णव संस्कारों व श्रृंगार प्रधान इस शैली का हिन्दुस्तानी एवं कर्नाटक शास्त्रीय संगीत शैलियों से अलग अपना स्वतंत्र शास्त्र पक्ष, क्रियात्मक पक्ष व सांगीतिक पक्ष है। 2015 में आई. आई. टी. भुवनेश्वर ने ओडिसी नृत्य में बी.टेक. पाठ्यक्रम प्रारम्भ किया है।

नृत्य के चरण व विषय वस्तु –

इसमें मंगलाचरण (भूमि प्रणाम व त्रिखंडी प्रणाम), बटु (शिव) नृत्य, ईष्ट वंदना, पल्लवी, गीताभिनय,तारीझामो व मोक्षनृत्य । गुरू केलुचरण महापात्र ने – बाल लीला, सुदामा चरित्र, ऋतु संहार, मेघदूत, कुमार संभव, आदि आध्यात्म धारा के विषयों का चयन कर इन्हें नृत्य शैली में पिरोया। वर्तमान में पंचकन्या, चित्रांगदा, गंगा–जमुना, जैसे विषय भी इस शैली की विषयवस्तु हैं लेकिन परंपरागत रूप से शिव, कृष्ण, राम, जगन्नाथ की स्तुतियाँ व जयदेव के गीत गोविंद की अष्टपदियाँ ही नृत्य की रचनाऐं हैं।

नृत्य प्रस्तुति में संगीत

नृत्य के दौरान मृदंग, करताल/मजीरे, बांसुरी, वीणा आदि वाद्यों से संगति की जाती है। ओडिसी शैली का अपना स्वतंत्र संगीत है। इसकी तालें – नवताल, दशताल, अग्रताल आदि। रागों में – कल्याना, नट, बरारी, पंचम, घनाश्री, भैरवी आदि तथा रागांग, भावांग व नृत्यांग से पल्लवी, भजन, छंद तथा गीत गोविन्द के पदों का प्रयोग होता है।

आभूषण व वेशभूषा

ओडिसी नृत्य के आभूषण 'ताराकाशी कला' (पतले तार) के नमूने हैं जो कि पारंपरिक उड़िया कला है। इसके आभूषणों में ताहिया, सींथी, टिक्का, माथापट्टी, अल्लका, कापा, झुमका, बाहिचुड़ी, कंकण, कमरबंद, घुंघरू आदि हैं। संबलपुरी व बोमकाई साड़ी कला की चमकदार गहरे नारंगी, बैंगनी, लाल, हरे, नीले रंग की साड़ी अथवा सुविधानुसार सिले हुए पायजामेंनुमा परिधान पहने जाते हैं।

गुरू केलुचरण महापात्र

गुरू व कलाकार

श्री मोहन महापात्र, केलुचरण महापात्र, पंकज चरणदास, रघुनाथ दत्ता, संयुक्ता पाणिग्रहीं, कुमकुम मोहंती, सोनल मानसिंह, मायाधर राउत, इन्द्राणी रहमान, रंजना गौहर, उपालि अपराजिता, माधवी मुद्गल, मधुमिता राउत, डोना गांगुलि आदि प्रमुख नृत्य गुरू व कलाकार हैं।

मणिपुरी नृत्य

प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण व मनोरम राज्य मणिपुर से विकसित यह नृत्य शैली विशुद्ध धार्मिक व

पौराणिक कथाओं पर आधारित है। इसमें वैष्णव पदावली का प्राधान्य है। अत्यंत आकर्षक वेशभूषा में मन्द–मन्द गति व पदाघातों से कोमलता व सुकुमारता का प्रदर्शन इस नृत्य में किया जाता है। इसका विकास, पारंपरिक ''लाईहारोबा'' शैली से है। इसमें रास के विविध स्वरूपों का दर्शन होता है जिनमें – बसंत रास, महारास, नित्य रास, कुंज रास, गोप रास, उलुखल रास, दिवा रास, राखाल रास आदि प्रकार हैं। इस नृत्य का अपना अप्रतिम सौंदर्य, मधुरता, कोमलता व आध्यात्मिक अनुभूतियाँ हैं।

लाई हारोबा नृत्य

पुंग चोलोम नृत्य

मणिपुर में प्रायः प्रत्येक गांव में कृष्ण मन्दिर हैं जहाँ नित्य प्रति लाई हारोबा, रास, भांगीपरेंग आदि नृत्य आयोजन होते हैं। मणिपुरी नृत्य शैली को स्थापित व परिष्कृत करने में महाराजा भाग्यचंद्र जयसिंह (1779) द्वारा प्रारंभ किए गए रास के विविध प्रकार, महाराजा गंभीर सिंह (1825–1834) के प्रयासों द्वारा भंगी परेंग, वृंदावन परेंग तथा महाराजा चंद्रकीर्ति (1849–1886) द्वारा पुंग चोलोम व नित्य रास के प्रयोग व प्रयास अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। गुरूदेव रविन्द्रनाथ टैगोर द्वारा किये गए विशिष्ट प्रयास भी नृत्य हेतु जीवनदायी रहे। नृत्य हेतु विस्तृत अध्ययन सामग्री ''गोविंद संगीत लीला विलास'' ग्रंथ में उपलब्ध है। इस नृत्य के दौरान पैरों में घुंघरू नहीं बांधे जाते तथा पद संचालन एक विशेष व अलग तरीके से होता है।

नृत्य के चरण

मणिपुरी नृत्य में चाली, तेलना, स्वरमाला, चतुरंग, कीर्तिपद (प्रबंध) आदि विविध चरणों में नृत्य किया जाता है।

मणिपुरी रास

नृत्य प्रस्तुति में संगीत

नृत्य में पुंग (मृदंग के समान अवनद्ध वाद्य), मंजीरा, बांसुरी, तार वाद्य पेना आदि की संगति होती है। जयदेव, विद्यापति, चंडीदास, गोविंददास आदि के पद तथा संस्कृत, मैथिली व ब्रजभाषा का प्रयोग किया जाता है।

तार वाद्य पेना

आभूषण व वेशभूषा

नृत्य की वेशभूषा अति विशिष्ट व आकर्षक है। खूबसूरत जरी की कढ़ाई युक्त, फूला–फूला लहंगा, ऊपर सिल्क का जैकेट, सिर पर पारदर्शी ओढ़नी व आभूषण, मेहंदी, चंदन आदि से श्रृंगार किया जाता है। पुरूष रेशमी पीतांबरी धोती, ऊपर अचकन, सिर पर मोर मुकुट धारण कर कृष्ण जैसी सुंदर वेशभूषा व आभूषण धारण करते हैं।

गुरू व कलाकार

गुरू नाबा कुमार, गुरू विपिन सिंह, राजकुमार सिंघजीत सिंह, गुरू वीर मंगलसिंह, दर्शना झवेरी, चारूसीजा आदि प्रमुख मणिपुरी नृत्य कलाकार हैं।

कथक

इसे कथक व नटवरी नृत्य के नाम से भी जाना जाता है। यह भारत का अत्यंत लोकप्रिय नृत्य व उत्तर भारत की प्राचीन नृत्य शैली है। इसकी उत्पत्ति कब हुई। इसका स्पष्ट उत्तर तो नहीं दिया जा सकता है, लेकिन ! इस नृत्य की पुरातनता के साक्ष्य अवश्य उपलब्ध है – ब्रह्म पुराण, महाभारत व नाट्यशास्त्र में अभिनेता के लिए ' कथक ' शब्द प्रयुक्त हुआ है। संभवतः प्राचीन काल में प्रचलित रास के विविध स्वरूपों का ही एक प्रकार वर्तमान कथक नृत्य है।

13 वीं शताब्दी के महत्त्वपूर्ण ग्रंथ संगीत रत्नाकर के नृत्याध्याय में उल्लेख है –

''कथका बन्दिनश्चात्र विद्यावन्तः प्रियम्वदाः।
प्रशंसा कुशलाश्चान्ये चतुरा सर्वमातुषु।।

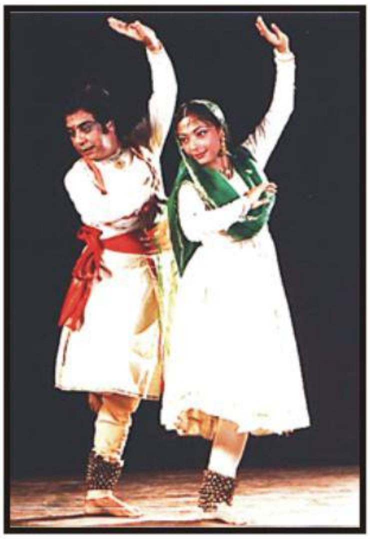

मध्यकाल के महत्त्वपूर्ण सांगीतिक ग्रंथ–संगीत दर्पण, संगीत मकरंद व कोहल रहस्य में कथक संबंधी महत्त्वपूर्ण विषय वस्तु (तत्कार, गत) का वर्णन प्राप्त होता है।

''कथयति यः स कथकः।
अर्थात–जो कथा कहे सो कथक कहाय।।

ऐसी मान्यता है कि प्राचीन काल से कथा कहने वालों को कथाकार व कथक कहा जाता था। जनरूचि से कथा के साथ नृत्य भी जुड़ गया तथा शैलीगत विशेषताओं के साथ नृत्य की विशिष्ट शैली के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। मुगलकाल में कथक कलाकारों को दरबारों में आश्रय व सम्मान मिला, कलाकारों ने भी दरबार में प्रतिष्ठा पाने व बादशाह को खुश रखने के लिये अनेक प्रयोगात्मक बदलाव किए। कथक की वेशभूषा में मुगल दरबारों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई

देता है। भक्ति प्रधान राधा–कृष्ण के पदों के साथ ही मुबारक बादियां तथा शृंगार प्रधान ठुमरियों का स्थान बढ़ा। उर्दू शब्दावली– सलामी, आमद अदा को स्थान मिला, साथ ही कृष्ण (नटवर नागर) का स्थान भी बना रहा। मध्यकालीन भक्ति आंदोलन की रचनाऐं भी कथक में ग्रहण की गईं। अष्टछाप के कवियों की रचनाओं में कथक शब्दावली का व्यापक प्रयोग मिलता है।

नृतति सुधंग, अंग, रंग संग राधिका
गिड़ि गिड़ि ता तत् थै थै रास रंगिनी —कृष्णदास

अवध नवाब वाज़िद अली शाह (1822–1887)के योगदान को लिखे बिना कथक की भूमिका अधूरी है। उनके दरबार में उच्च श्रेणी के कलाकारों व नर्तकों को प्राश्रय व प्रशिक्षण प्राप्त हुआ। वे स्वयं कृष्ण बनकर रास नृत्य करते थे। उन्होंने 'बन्नों' व 'नाज़ो' नामक पुस्तक की रचना की। कथक के क्रियात्मक व शास्त्रीय दोनों पक्षों का विकास इनके काल में हुआ। अनेक प्रकार की गतें, आदम, सलामी तथा ठुमरियों की रचना स्वयं वाजिद अली शाह ने की। ठाकुर प्रसाद जी उनके नृत्य गुरू थे।

19वीं शताब्दी में पूरे उत्तर भारत में कथक नृत्य का व्यापक प्रसार हुआ तथा पूरे उत्तर भारत के अलग–अलग दरबारों में इसे आश्रय मिला । इसी दौरान कथक के लखनऊ, जयपुर, बनारस तत्पश्चात रायगढ़ घराने अस्तित्व में आए।

रायगढ़ नरेश राजा चक्रधर सिंह (1905–1947)का नाम भी नवाब वाज़िद अली शाह के समान ही संगीत, नृत्य व शास्त्र रचना हेतु अमर है। अनेक उच्च संगीतकार, जयपुर व लखनऊ घराने के नृत्यकार इनके दरबार में थे। समस्त शैलियों का अध्ययन कर इन्होंने कथक की रायगढ़ शैली को विकसित किया। प्रस्तुति के दौरान स्वयं तबला, पखावज बजाते थे। राजा चक्रधर सिंहस्वयंअनेक तोड़ों व ठुमरियों के रचनाकार थे, संगीत, कला व नृत्य संबंधी कुल 15 महत्वपूर्ण पुस्तकों की इन्होंने रचना की।

जयपुर के गुणीजन खाने को पोषित करने तथा कलाकारों को आश्रय देने में सवाई जयसिंह द्वितीय, सवाई राम सिंह द्वितीय व राजा माधोसिंह द्वितीय का योगदान भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

स्वतंत्रता के पश्चात भारत सरकार व राज्य सरकारों द्वारा विद्यालयों, महाविद्यालयों व संस्थागत कथक शिक्षा हेतु समुचित प्रयास किए गए हैं। संगीत नाटक अकादमी द्वारा कथक केन्द्र की स्थापना, राष्ट्रीय कथक समारोहों का आयोजन, प्रतिभावान विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति, प्रतिष्ठित राष्ट्रीय सम्मान, अनेक कलाकारों, सरकारी, गैर–सरकारी व निजी संस्थाओं आदि के स्तुल्य प्रयास से न केवल भारत में अपितु विश्व स्तर पर कथक नृत्य शैली की विशेष पहचान है। वर्तमान में कथक शिक्षण–प्रशिक्षण एक उच्च सामाजिक स्तर (सोशल स्टेटस) का प्रतीक है। अभिजात वर्ग का कथक के प्रति रूझान उसके उज्ज्वल भविष्य का संकेत देता है।

नवाब वाज़िद अली शाह

राजा चक्रधर सिंह

सवाई जय सिंह द्वितीय

सवाई राम सिंह द्वितीय

सवाई माधो सिंह

कथक नृत्य के चरण

पदाघातों व घुंघरू के संयोग से लय–ताल के अद्‌भुत स्वरूप का प्रदर्शन करते हुए ठाठ, नृत्यांग, जाति शून्य, भाव रंग, इष्टपद, गतिभाव, तराना आदि अंगों की प्रस्तुति दी जाती हैं। नृत्त (शुद्ध नर्तन, बिना गीत व भाव के), **नृत्य** (गीत व भाव युक्त), **नाट्य** (अभिनय) का बेहतरीन संयोग कथक की पहचान है।

नृत्त अंग में आमद, सलामी, ठाठ, तोड़ा, टुकड़ा, परण आदि। नृत्य में कवित्त, गत आदि। नाट्य में वंदना ठुमरी, भजन, तराना, दादरा, गजल आदि।

प्रायः प्रस्तुति में गणेश वंदना, आमद, ठाठ, टुकड़ा, तोड़ा, परन, पढंत, गतभाव प्रदर्शन व तत्कार का क्रम रहता है। इस दौरान ग्रीवा (गर्दन), हस्तमुद्रा (हाथ), पद भेद, भृकुटि (भौंह) व दृष्टि के विविध संचालन दर्शनीय व आकर्षक होते हैं।जिनका शास्त्रोक्त अध्ययन उच्च स्तर के पाठ्यक्रम में किया जाएगा।

नृत्य प्रस्तुति में संगीत

कथक नृत्य की संगति में प्रायः सारंगी, तबला, पखावज, हारमोनियम, सितार, घुंघरू आदि वाद्यों का प्रयोग किया जाता है।नृत्यांग (नृत्य के बोल युक्त – तत्, थेई), तालांग (तबले के बोल युक्त – तिटकत्), कवितांग (कविता के शब्द युक्त – बीन मृदंग संग रास) का मिश्रित स्वरूप नृत्य में प्रस्तुत होता है। गीत शैलियों में प्रायः ध्रुपद, होरी, चतुरंग, ठुमरी, भजन, तराना, दादरा, गजल आदि का प्रयोग होता है। लखनऊ घराने के बिंदादीन महाराज ने लगभग 5000 रचनाऐं रची हैं जिन्हें कथक नृत्य जगत में सर्वत्र अत्यंत आदर व गौरव प्राप्त है।

वेशभूषा –

- कथक नृत्य की वेशभूषा में युगांतरकारी परिवर्तन दिखाई देते हैं।
- प्राचीन काल में देवी–देवताओं की पोशाक (कृष्ण–राधा, शिव–पार्वती आदि) में नृत्य किया जाता था।
- मुगलकाल में चूड़ीदार पायजामा, लंबा चोगा, ज़रीदार जाकेट, दुपल्ली नावदार लंबी टोपी व दुपट्टा का चलन था।
- राजपूत काल में नर्तकी लहंगा, कुरती व ओढ़नी तथा नर्तक अंगरखा व चूड़ीदार पायजामा को पहनकर नृत्य करते थे।

मुगलकालीन वेशभूषा

राजपूत कालीन वेशभूषा

– वर्तमान में परंपरागत परिधान के साथ–साथ नए प्रयोग भी दिखते हैं।
– आभूषणों में कंगन, कड़े, हार, झुमके, नथ, हाथफूल, बाजूबंद, अंगूठी आदि का प्रयोग किया जाता है

कथक हेतु कथानक

कथक या नटवरी नृत्य में प्रस्तुति के दौरान जिन पारंपरिक व ऐतिहासिक कथानकों का प्रयोग किया जाता है उनमें – कृष्णलीला, कालिय दमन, बाल लीला, गोवर्द्धन लीला, पूतना वध, पनघट, महारास, माखन चोरी, सुदामा चरित्र, मीरां के गिरधर आदि विभिन्न कृष्ण के स्वरूपों की प्रस्तुति की जाती है। इसके अलावा अहिल्या उद्धार, गज व ग्राह, दशावतार, चीरहरण, शबरी, शिव तांडव आदि हिन्दु कथानकों का चित्रण किया जाता है। कुमार संभव, मेघदूत, अभिज्ञान शाकुन्तलम, मालविकाग्निमित्रम तथा वर्तमान में समाज के अन्य विषय– नारी उत्पीड़न, अशिक्षा आदि समस्याओं का मंचन कर विषय विस्तार व अभिनव प्रयोग किए जा रहे हैं।

कथक गुरू व नृत्यकार

कालका–बिंदादीन महाराज, अच्छन महाराज, लच्छू महाराज, शंभू महाराज, बिरजू महाराज, सितारा देवी, गोपी कृष्णा, प्रेरणा श्रीमाली, वेरोनिक अजान, सास्वती सेन, पं. सुंदर प्रसाद, पं. जयलाल, पं. नारायण प्रसाद, पं. चिरंजीलाल, उमा शर्मा, काजल मिश्र, कुमुदनी लखिया, कुंदनलाल गंगानी ,नारायणप्रसादजी पं.माणकचन्दजी जोधपुरी आदि एक विशाल श्रृंखला है।

प्रेरणा श्रीमाली

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- नृत्य अभिव्यक्ति की एक प्राचीन कला है।
- शास्त्रीय नृत्य शैलियों पर लोक तत्वों का प्रभाव स्पष्टतया दिखाई देता है।
- भारतीय शास्त्रीय नृत्यों ने राष्ट्र को वैश्विक पहचान दी है।
- वर्तमान में कुल 8 शास्त्रीय नृत्य शैलियां, भरतनाट्यम, कथक, ओडिसी, मणिपरी, कुचिपुड़ी, कथकली, मोहिनीअट्टम, सत्रिया प्रचलित हैं।
- नृत्य की सफलता रस सृष्टि में है। शास्त्रौक्त नवरस–श्रृंगार, करूण, वीर, भयानक, हास्य, रौद्र, वीभत्स, अद्भुत व शांत है।
- भरतनाट्यम के पुनरूद्धार में रूक्मिणी देवी अरूण्डेल के प्रयास अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं।
- भरतनाट्यम शैली का विकास तंजौर के मंदिरों में प्रचलित देवदासी अट्टम से हुआ है।
- उड़ीसा में 'महारी' व 'गोटिपुवा' शैलियों से ओडिसी शैली का विकास हुआ।
- ओडिसी नृत्य शैली का संगीत, प्रचलित संगीत पद्धतियों (हिन्दुस्तानी व कर्नाटक संगीत)से भिन्न व स्वतंत्र है।
- आई आई टी भुवनेश्वर ने 2015 से ओडिसी नृत्य में बी. टेक. पाठ्यक्रम प्रारंभ किया है।
- मणिपुरी नृत्य के उत्थान में गुरूदेव रविन्द्रनाथ टैगोर के प्रयास महत्त्वपूर्ण हैं।
- पारंपरिक 'लाई हारोबा' नृत्य से मणिपुरी नृत्य शैली विकसित हुई है।

- अवध नवाब वाजिद अली शाह व रायगढ़ नरेश चक्रधर सिंह जयपुर नरेश सवाई जयसिंह ने कथक नृत्य के विकास व प्राश्रय में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।
- प्राचीन राधा कृष्ण की रास व मुगल संस्कृति का समेकित प्रभाव कथक में दृष्टिगत होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुवैकल्पिक प्रश्न

1. निम्न से संगीत, नृत्य कार्य में संलग्न प्राचीन जाति/वर्ग है –
   (अ) चारण, शैलूष (ब) लंगा, मांगणियार (स) ब्राह्मण, क्षत्रिय (द) सिक्ख, पारसी
2. तमिलनाडु प्रदेश से प्रचलित शास्त्रीय नृत्य शैली है –
   (अ) ओडिसी (ब) कुचिपुड़ी (स) भरतनाट्यम (द) यक्ष गान
3. भरतनाट्यम के विकास व उत्थान हेतु जिसने कार्य किया ?
   (अ) केलुचरण महापात्र (ब) बिरजू महाराज (स) गुरू विपिन सिंह (द) रूक्मिणी देवी अरूण्डेल
4. नाट्यशास्त्र में वर्णित 'औड्र मागधी' का संबंध किससे है ?
   (अ) कथक (ब) ओडिसी (स) कथकलि (द) मोहिनीअट्टम
5. ओडिसी नृत्य में किस कला की साड़ी पहनने का प्रचार है –
   (अ) बनारसी (ब) कांजीवरम् (स) बोमकाई (द) मैसूर सिल्क
6. 'पुंग' वाद्य है ?
   (अ) तत् (ब) अवनद्ध (स) घन (द) सुषिर
7. कथक नृत्य का अंग है ?
   (अ) आलारिपु (ब) चाली (स) आमद (द) पल्लवी
8. अच्छन महाराज का संबंध किस नृत्य से है ?
   (अ) कथक (ब) भरतनाट्यम (स) मणिपुरी (द) ओडिसी
9. किस नृत्य में पाँवों में घुंघरू नहीं पहने जाते हैं ?
   (अ) भरतनाट्यम (ब) ओडिसी (स) कथक (द) मणिपुरी
10. स्थायी भाव "जुगुप्सा" का संबंध किस रस से है ?
    (अ) श्रृंगार (ब) भयानक (स) अद्‌भुत (द) वीभत्स
11. सुमेलित कीजिये –

(1) नटवरी	(अ) भरतनाट्यम
(2) गोटिपुवा	(ब) मणिपुरी
(3) लाई हारोबा	(स) ओडिसी
(4) दासी अट्टम	(द) कथक

12. संबंध मिलाइये–

(1) केलुचरण महाराज	(अ) ओडिसी
(2) बिंदादीन महाराज	(ब) मणिपुरी
(3) दर्शना झवेरी	(स) भरतनाट्यम
(4) मृणालिनी साराभाई	(द) कथक

अतिलघुरात्मक प्रश्न

1. कथक नृत्य को किन अन्य नामों से भी जाना जाता है ?

2. भरतनाट्यम शब्द की शाब्दिक व्याख्या कीजिऐ ?
3. मणिुपरी नृत्य में किन वाद्यों द्वारा संगत की जाती है ?
4. मुगलकालीन कथक वेशभूषा कैसी थी ?
5. आधिकारिक तौर पर 'ओडिसी' नामकरण कब व किनके प्रयासों से स्वीकृत हुआ ?

लघुरात्मक प्रश्न

1. भारत की प्रमुख शास्त्रीय नृत्य शैलियों के नाम व उद्गम प्रदेश लिखिए ?
2. ओडिसी नृत्य की वेशभूषा समझाईये ?
3. मणिपुरी नृत्य में प्रयुक्त विभिन्न प्रकार के रास के नाम लिखिए ?
4. ''नवाब वाज़िद अली शाह पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए ?
5. शास्त्रोक्त भाव व रसों का उल्लेख कीजिए ?

निबंधात्मक प्रश्न

1. भरतनाट्यम नृत्य शैली को समझाइये।
2. ''मणिपुरी नृत्य शैली प्रकृति व धर्म की गोद में विकसित हुई'' नृत्य के पश्चिम में कथन की विस्तृत समीक्षा लिखिए ।
3. ओडिसी नृत्य का विस्तृत दीजिए ।
4. ''कथक नृत्य में अनेक बदलाव देखे हैं'' कथन के अन्तर्गत नृत्य शैली को समझाइये।

उत्तर– बहुवैकल्पिक

1. अ, 2. स, 3–द, 4–ब, 5–स, 6–ब, 7–स, 8–अ, 9–द, 10–द,
11–(1–द), (2–स), (3–ब), (4–अ)
12. (1–अ), (2–द), (3–ब), (4–स)

शिक्षकों हेतु अनुदेश

- शास्त्रीय नृत्य शैलियों के चित्रों का संकलन करवावें।
- विद्यार्थियों को इनके वीडियो दिखाकरल शैी की विशेषता, वेशभूषा, वाद्य संगति आदि का ज्ञान करावें।